Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2021 SHISRRJ | Volume 4 | Issue 1 | ISSN : 2581- 6306

# रस की ऐतिहासिकता

**कु0 संजू**
शोधच्छात्रा,
संस्कृत–विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत।

**Article Info**
Volume 4, Issue 1
Page Number : 126-135

**Publication Issue :**
January-February-2021

**Article History**
Accepted : 05 Jan 2021
Published : 10 Jan 2021

**सारांशः** – जगन्नाथ जी ने अभिनवगुप्त आदि आचार्यों के मत को बताकर कहा है कि वस्तुतः 'रसो वै सः' इत्यादि श्रुति के स्वारस्य से रत्याद्यवच्छिन्नभग्नावरणाचित् अर्थात् रत्यादिभाव–विषयक आवरण–रहित आत्मचैतन्य ही रस है, न कि वह चैतन्य का विषय रत्यादि, क्योंकि यदि चैतन्य–विषयीभूत रति आदि को रस मान लिया जाय तो रस की चैतन्यता नहीं रहती है तब रस और चैतन्य में एकता को बतलाने वाली 'रसो वै सः' इत्यादि श्रुति के साथ विरोध हो जाता है। अतः रत्यादिविशिष्ट आवरण रहित आत्मचैतन्य ही रस है।

**मुख्य शब्द** – रस, अभिनवगुप्त, जगन्नाथ, कव्यशास्त्रीय, अलौकिक, ऋग्वेद,संस्कृत।

रस की ऐतिहासिकता पर दृष्टि डालने से हमें ज्ञात होता है कि रस शब्द वैदिक काल से ही प्रयुक्त होता आ रहा है।

प्राचीनकाल से ही रस शब्द जल, सार, वीर्य, द्रव, स्वाद, विष, धातु, मधुरादि छह रस पारद, परमात्मा, श्रृंगार आदि काव्य रस एवं सुरा, शोणित, देह आदि अर्थों में अनवरत प्रयुक्त होता आ रहा है। वेदादि में अनेक बार प्रयुक्त रस शब्द के आधार पर निःसन्देह कहा जा सकता है कि आयुर्वेदीय लौकिक रस तथा कव्यशास्त्रीय अलौकिक रस वेदाब्धि से ही निःसृत है। तत्पश्चात् वहीं से प्रेरणा पाकर आयुर्वेद प्रवर्तकों ने लौकिक रसों का तथा नाट्य या काव्यशास्त्राचार्यों ने श्रृंगार आदि[1] अलौकिक रसों का प्रतिपादन किया है। वैदिक साहित्य को न केवल रस सामान्य का ही अपितु श्रृंगार, हास्य आदि रस–विशेषों का भी प्रेरणा स्रोत मानना असंगत नहीं है। रस के ऐतिहासिक क्रम को निम्न आधारों पर विवेचन किया जा सकता है–

ऋग्वेद में रस शब्द मुख्यतः निम्नलिखित अर्थों में प्रयुक्त हुआ है–

ऋग्वेद के 1–23–23 में 'रस' शब्द 'जलसार' का बोधक है।[2]

'जम्भे रसस्य वावृधे' यहाँ पर रस का अर्थ गोदुग्ध किया गया है। महेयत् पित्रईं रसम्[3]। यहाँ पर रस शब्द का वाच्यार्थ है पृथिवी का सारभूत तत्त्व। परिदाय रसं दुहे।[4] यहाँ पर पठित रस पुरुष के सारभूत वीर्य अर्थ को बताता है। रसा रजांस्यनुविष्ठिताः[5]। यहाँ पर कहा गया है कि जिस प्रकार से अन्तरिक्ष में वात सर्वत्र व्याप्त हैं ठीक उसी प्रकार से अम्लादि षड् रस लौकिक पदार्थों में स्थित हैं।

**Copyright: ©** the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

वृश्चिकस्यारसं विषमरसं वृश्चिक ते विषम्[6]। प्रस्तुत मन्त्र में अरस का अर्थ असार एवं रस का अर्थ सार है।

मध्वो रसो सुगमस्ति[7]। इस स्थान पर रस शब्द सोम रस का वाचक है।

ऋग्वेद 6–44–22 में इन्द्र से कहा गया है कि हे इन्द्र आपके लिए स्वादु रसनीय अर्थात् आस्वाद्य तथा मधु के समान पीने योग्य यह सोम है– ''स्वादू रसो मधु पेयो वराय''। यहाँ रस का प्रतिपादित रसनीयत्व का बीज माना जा सकता है। इस प्रकार अमृतमय अर्थ में ''सोम इन्द्रियो रसः''[8]।

हर्ष अथवा मद के कारणार्थ में 'रसं मदाय धृष्वये''[9]। रस इन्द्रियवर्धक अर्थ में भी कहा गया है– 'दधान इन्द्रियं रसम्'। ''दधानः कलशे रसम्''[10] इस ऋग्वेदी मन्त्र में प्रस्तरों अभिषुत लताओं के निचोड़ के अर्थ में रस का व्यवहार हुआ है।

उपर्युक्त रस शब्द के विवेचन एवं प्रयोगों से प्रमुख रूप से रसनेन्द्रिय–ग्राह्य जल, मधुरादि रस, सोम अभिषुत द्रव तथा मादक आदि पदार्थ प्रतीत होते हैं। इनके अतिरिक्त वाग्रस अर्थात् वाणी के सारभूत अर्थ में भी रस शब्द का प्रयोग हुआ है।

ऋषिभिः संभृतं रसम्[11], अध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम्'[12]। इस स्थान पर ऋषियों द्वारा सम्पादित सूक्त–संघ को वेद का रस अर्थात् सार कहा गया है। पूर्वोक्त रस की रसनेन्द्रिय–ग्राह्यता से इस रस में श्रोत्रेन्द्रिय–ग्राह्यता रूप विलक्षणता पायी जाती है।

ऋग्वेद में ही एक अन्य स्थान पर उल्लेखित है– 'धनञ्जयः पवते कृत्व्यो रसो विप्रः कविः काव्येन' यहाँ कवि और काव्य के प्रसंग में रस का उल्लेख मिलता है।[13] इस स्थल पर कर्मठ, मेधावी, कवि एवं रस–रूप सोम देव को काव्य कर्म के द्वारा पवित्र होने वाला कहा गया है। प्रस्तुत मन्त्र में काव्य के द्वारा कवि को रस के रूप में कहने से जो काव्य, कवि और रस का सम्बन्ध प्रतिपादित होता है वह पश्चात् के काव्य और रस के सम्बन्ध का आधार है। यो वः शिवतमो रसः इस स्थान पर जो जल सम्बन्धी रस को शिवतम या आनन्दमय बताया गया है वह रस की आनन्दमयता काव्य–रस की आनन्दमयता का बीज है।

उपर्युक्त उद्धरणों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि ऋग्वेद में भी रस शब्द का प्रयोग भौतिक रस के अतिरिक्त वाग्रस या काव्य रस के अर्थ में भी हुआ है।

ऋग्वेद के समान ही यजुर्वेद, सामवेद एवम् अथर्ववेद में भी रस शब्द का प्रयोग उन पूर्वोक्त अर्थों में हुआ है।

यजु0 2–32 के 'नमो वः पितरो रसाय' इस प्रस्तुत मन्त्र में रस शब्द से वसन्त आदि छह ऋतुओं का बोध होता है। मधु आदि रस वसन्त ऋतु में ही वृक्षों में उत्पन्न होते हैं, इसलिये वसन्त को रस कहा गया है। अथर्ववेद के 'या रसस्य हरणाय'[14] इस मन्त्र में रस का अर्थ शोणित होता है और तां रसेनाभिवर्धताम्[15]। इस रस के दधि, घृत, मधु आदि अर्थ होते हैं।

नाट्य वेद की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भरतमुनि ने लिखा है कि अथर्ववेद से रस लिया गया है[16] अर्थात् ऋग्वेद से पाठ्य, यजुर्वेद से अभिनय, समावेद से गान एवम् अथर्ववेद से रस को लेकर प्रजापति ने पञ्चम नाट्य–वेद का निर्माण किया है।

इस तरह रस सम्प्रदाय के प्रधान आचार्य भरतमुनि ने ही नाट्य–रस का आधार वेद को ही स्वीकार किया है।

**ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णित 'रस' शब्द–**

ऐतरेय ब्राह्मण में अनेकशः प्रयुक्त हुआ रस शब्द तो उन्हीं अर्थों को बतलाता है[17], किन्तु शतपथ ब्राह्मण में उन अर्थों के अतिरिक्त छन्दरस या काव्य–रस के विषय में बतलाया गया है कि प्रजापति ने मनुष्य लोक को अमृत रस का पान कराने के निमित्त छन्दों में रस का आधान किया। यह छन्द रस सभी रसों में उत्कृष्ट रस माना गया। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि छन्दों के सरस होने पर ही इष्टसिद्धि मानी गयी तथा यज्ञ का विस्तार हुआ।[18] काव्य तथा नाट्य तभी सरस होते हैं जब छन्द सरस हो। यहाँ पर रसनेन्द्रिय–ग्राह्य सोम रस आदि से भिन्न श्रवणेन्द्रिय–ग्राह्य छन्द रस का प्रतिपादन किया गया है। इस प्रकार यह द्रष्टव्य है कि शतपथ ब्राह्मण में काव्य रस का स्पष्ट संकेत मिलता है। शतपथ ब्राह्मण में ही ब्रह्मा को यज्ञ का भिषक् बतलाया गया है। जो कि बहुत ही साभिप्राय है। जिस प्रकार से वैद्य का सम्बन्ध पारद रस से होता है, ठीक उसी प्रकार ब्रह्मा का सम्बन्ध छन्द–रस से माना गया है।

यह कहना गलत नहीं होगा कि आचार्य क्षेमेन्द्र ने जो धातुवाद–रस–सिद्ध–शरीर के स्थिर जीवन की तरह शृङ्गारादि रस–सिद्ध काव्य में औचित्य को स्थिर जीवित माना है, उसका भी बीज यहीं निहित है।

शतपथ ब्राह्मण में ही आया है कि देवों ने ऋक् तथा साम में स्थित रस का छन्दों में आधान करके स्वर्ग अर्थात् आनन्द को प्राप्त किया।[19] यहाँ पर छन्दरस के द्वारा आनन्द प्राप्ति के उल्लेख में इसका स्पष्ट संकेत मिलता है कि ऋक् एवं साम का रस छन्दों द्वारा नाट्य एवं काव्य में आया है।

शतपथ ब्राह्मण में ही माना गया है कि ओषधि, वनस्पति आदि की जो सृष्टि हुई है, वह वाणी के रस से हुई है।[20] मूलतः देवसम्बन्धी इस वाग्रस या वाक्य–रस से इस जगत् में भी वाक्य रस अथवा काव्य रस का जन्म हुआ है। इस रसात्मक वाक्य को काव्य का मूल आधार मानना असंगत नहीं होगा। इतना कहना ही पर्याप्त नहीं है, रस को विश्व–सृष्टि का मूल अर्थात् आधार माना गया है तथा रस से रश्मियों[21] की, दिशाओं[22] की, विदिशाओं[23] की, अग्नि[24], घृत आदि सभी पदार्थों की उत्पत्ति मानी गयी है। इसी आधार पर उपनिषद् में सकल के कारण रूप परमात्मा को रस कहा गया है।[25]

''यावानु वै रसस्तावानात्मा''[26] के द्वारा शतपथ ब्राह्मण में जितने रस उतनी आत्माओं का उल्लेख करके रस एवं आत्मा का सम्बन्ध बतलाया गया है। तत् पश्चात् इसी को आधार मानकर काव्य–रस को आत्मा कहा गया है। आत्मा और रस का यह सम्बन्ध प्रदर्शन काव्यशास्त्रीय रसात्मा के लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। शतपथ ब्राह्मण में ही और अनेक स्थानों पर वाणी में रस का आधान बतलाया गया है। इसको अपरिमित मानकर[27] स्पष्टः 'रसो वै सः' का संकेत दिखाया गया है। रस से युक्त होकर प्रजापति ने ऋक्, साम, यजुष् आदि में रस का आधान किया और तत्पश्चात् होता, उदगाता आदि ने भी ऋचाओं, उक्थों से रस का विधान किया।[28] इस स्थान पर स्पष्ट रूप से काव्य–रस का उल्लेख हुआ है। सभी वेदों में सामवेद को रस माना गया है। इस प्रसङ्ग में ही वेदों को रसयुक्त करने का भी विधान हुआ है। 'वेदानां सामवेदोऽस्मि' गीतोक्त का भी मूल आधार 'शतपथ' के पूर्वोक्त अंश को माना जा सकता है।

ब्राह्मण ग्रन्थों ने ऋक्, साम और यजुष् के साथ रस का स्पष्ट रूप से विधान होने के कारण यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वाग्रस या काव्यरस भी प्राचीन काल से विचार का विषय रहा है।

**उपनिषदों में वर्णित रस –**

प्रश्न, मुण्डक, कठ आदि उपनिषदों में भी रस शब्द के वही पूर्वोक्त अर्थ मिलते हैं।[29] तैतिरीयोपनिषद् में ''रसो वै सः''। ''रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति[30]'' इस स्थान पर परमात्मा को रस रूप एवं आनन्द का मूल कारण माना गया है। इसके भाष्य में शंकराचार्य ने बताया है कि तृप्ति का हेतु एवं आनन्द का सम्पादक

मधुर आदि लोक में प्रसिद्ध है। जिस प्रकार से संसार में इस बाह्य रस से मनुष्य आनन्दित होते हैं, ठीक उसी प्रकार से परमात्मा रूप रस को पाकर बाह्य–साधनों से रहित निष्काम सिद्ध योगी परमानन्दित होते हैं। इसलिये परमानन्द के कारण वही रस–ब्रह्म हैं। काव्यशास्त्री आचार्यों ने इसी रस के तुल्य काव्य–रस को मानकर इसे परमाह्लाद रूप बतलाया है। छान्दोग्य उपनिषद् में रस के सम्बन्ध में कहा गया है कि भूतों का रस है, पृथिवी, पृथिवी का रस है जल, जल का रस है औषधि, औषधियों का रस है पुरुष, पुरुषों का रस वाक् है, वाणी का रस ऋक् है, ऋचा का रस साम और साम का रस है उद्गीथ अर्थात् प्रणव। प्रणव को रसों में भी रसतम माना गया है।[31] छा0उ0 में ही परमात्म रूप रस से ही ऋक्, यजु और साम की सृष्टि बतलायी गयी है।[32] रसनेन्द्रिय से ग्राह्य मधुरादि रसों के अतिरिक्त आस्वाद्य के अर्थ में जो रस का प्रयोग बृहदारण्यक, सुबाल, प्रश्न आदि उपनिषदों में हुआ है उसे काव्यरस की आस्वाद्यता का पूर्णरूप माना जा सकता है। इस प्रकार से उपनिषदों में प्रयुक्त 'रस' शब्द लौकिक 'रस' के अन्यत्र अलौकिक काव्यरस पर भी पूर्ण रूप से प्रकाश डालते हैं।

निरुक्तकार ने सूर्य को उषा का वत्स इसलिए कहा गया है कि वे उषा के रस–अवश्याय का उसी प्रकार हरण करते हैं जिस प्रकार से वत्स अपनी माता के क्षीर का हरण करता है।[33] महर्षि यास्क ने अश्विन् की व्युत्पत्ति बताते हुये लिखा है कि दोनों में एक रस–उदक–से सम्पूर्ण भुवन को व्याप्त करते हैं तथा दूसरे तेज से।[34] इसी प्रकार इन्द्र कर्म वृष्टि से जल–प्रदान एवम् आदित्य का कर्म रस का आदान और रश्मि द्वारा रस का धारण बतलाया गया है। निष्कर्षतः हमें दृष्टिगत होता है कि महर्षि यास्क रचित निरुक्त में हमें जो रस शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है; वह दुग्ध, तुषार, जल आदि के अर्थ में प्राप्त होता है।

महर्षि पाणिनि के व्याकरण ग्रन्थ में 'रस' शब्द धातु शब्द के अर्थ में और आस्वादन एवं स्नेहन के अर्थ में मिलता है। व्याकरणशास्त्र में 'रस' शब्द की व्युत्पत्ति कई प्रकारों से की गयी है। जिसमें से महत्त्वपूर्ण व्युत्पत्तियाँ निम्नवत् हैं –

**1. 'रस्यते–आस्वाद्यते'[35]** प्रस्तुत व्युत्पत्ति के आधार पर रस शब्द परमात्मा रूप रस, मधु, सोम, गन्ध, मधुरादि अर्थों को प्रकट करता है।

**2. 'रस्यते अनेन'[36]** इस व्युत्पत्ति से निष्पन्न रस शब्द गुण, राग, वीर्य, देह आदि अर्थों को प्रकट करता है।

**3. 'रसति रसयति वा रसः'[37]** इससे निष्पन्न 'रस' शब्द धातु, पारद, द्रव, जल आदि अर्थों को बोध कराता है।

**4. 'रसनं रसः आस्वादः'[38]** इस व्युत्पत्ति के आधार पर रस शब्द शृङ्गार आदि, रस, आस्वादादि के अर्थों का वाचक है।

इस प्रकार चतुर्थ पक्ष में रस तथा आस्वाद में भेद होने पर भी 'रसः स्वाद्यते (रस का आस्वादन किया जाता है) इस प्रकार का प्रयोग तो अभेद में ही भेद के आरोप से ''राहोः शिरः'' के समान काल्पनिक है।

महर्षि वाल्मीकि रचित रामायण महाकाव्य में वर्णित है कि क्रूर निषाद के शर से विद्ध काम–मोहित क्रौंच को तड़पता देख महर्षि वाल्मीकि जी का शोक श्लोक रूप में स्फुटित हो गया था।[39] वह आम्नाय के पश्चात् लौकिक छन्द का प्रथम अवतार था।[40] इस बात को स्वयं भगवान् वाल्मीकि ने स्वीकारा है कि उस स्फुटित श्लोक का कारण उनका वह शोक ही है, उसके अन्यत्र कुछ भी नहीं है।[41]

महर्षि वाल्मीकि ने रस, भावादि के द्वारा ही काव्य–सृष्टि की सम्भावना बतलायी है। शृङ्गार, करुण, हास्य आदि सभी रसों से रामायण काव्य को समन्वित बतलाया गया है। रामायण महाकाव्य के टीकाकार गोविन्दराज ने 'रौद्रादिभिश्च संयुक्तम्' में आदि पद से बीभत्स, अद्भुत तथा शान्त इन तीन रसों को माना है।[42] अतः रामायण महाकाव्य में नौ रसों का उल्लेख द्रष्टव्य है।

भारतीय परम्परानुसार महाभारत के सम्बन्ध में मान्यता है कि 'यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्' अर्थात् महाभारत काव्य में जो कुछ भी है वही सब अन्यत्र भी है, जो महाभारत में नहीं है वह बाहर भी नहीं है। आनन्दवर्धनाचार्य ने महाभारत में अङ्गी रस शान्त को स्वीकार किया है। अङ्ग रूप में शृङ्गार, वीर, रौद्र, करुण आदि सभी रसों का विधान हुआ है। 'उत्तरा–विलाप'[43] में करुण रस बहुत ही अधिक हृदय–द्रावक है। न केवल रसादि ध्वनि, अपितु वस्तु ध्वनि के भी कई उदाहरण महाभारत से अलङ्कार शास्त्र में उद्धृत किये गये हैं, अर्थात् महाभारत में रस, भाव आदि का पूर्ण रूप से विधान किया गया है।

रस–सम्प्रदाय के प्रधान आचार्य भरतमुनि ने सर्वप्रथम शास्त्रीय पद्धति से अपने नाट्यशास्त्र में रस, भावादि का सांगोपांग विवेचन किया है। भाव, विभाव, अनुभाव, व्यभिचारि, स्थायी आदि का जो विवेचन नाट्य–शास्त्र में हुआ है, उसको ही उपजीव्य मानकर पीछे आचार्यों ने उन सभी पर विचार किया है। भरत मुनि के 'रस–सूत्र'[44] को ही लेकर बाद में अलङ्कार शास्त्र में अनेक 'वाद' प्रचलित हुए। यद्यपि वहाँ पर नाट्य के दृष्टिकोण से ही रस आदि पर विचार किया गया है, फिर भी वह काव्य के लिए सर्वथा उपयुक्त है। अतः बाद के नाट्य एवं काव्य रस में किसी प्रकार की भिन्नता नहीं स्वीकार की गयी है। भरत मुनि के 'नाट्य–शास्त्र' में रस, भाव, अभिनय, धर्मी, वृत्ति, प्रवृत्ति, सिद्धि, स्वर, वाद्य, गान, रंगादि विभिन्न विषयों का विवेचन[45] होने पर भी रस की ही प्रधानता के कारण उसका ही प्रथम विचार किया गया है, क्योंकि विना रस के नाट्य का कोई भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है।[46] रसों की उत्पत्ति आदि पर विचार करने के बाद उन्होंने प्रत्येक रस के विभावादि को बतलाते हुए स्थायी भाव के रसत्व को दिखलाया है। अभिनवगुप्त के अनुसार 'स्थायिभावांश्च रसत्वमुपनेष्यामः' इसके ही अनन्तर 'नाट्य–शास्त्र' में आचार्य भरत मुनि ने शमस्थायिभावक शान्त रस का विचार किया था। चूँकि सभी रसों का आस्वाद शान्त–प्राय ही होता है, अतः शान्त के मुख्यत्व एवं सर्वरस प्रकृतित्व को बतलाने के लिए शान्त का सर्वप्रथम उन्होंने विचार किया[47] इसलिये अभिनव गुप्त के अनुसार भरत रचित 'नाट्य शास्त्र' में भी शान्त को लेकर नौ रसों का प्रतिपादन हुआ है। इसकी पुष्टि 'विष्णुधर्मोत्तर' से भी होती है।[48] नाट्य शास्त्र के गायकवाड़ संस्करण में 'एवं नव रसा दृष्टा नाट्य ज्ञैर्लक्षणान्विताः'।[49] इस तरह से शान्त रस का उपसंहार किया गया है।

नाट्यशास्त्रकार ने रस के लिये आत्मा शब्द का प्रयोग न करते हुये भी उसकी प्रमुखता स्पष्ट शब्दों में बतायी है। रस के विना नाटकीय प्रयोजनों की सिद्धि नहीं होती, यही कारण है कि उन्होंने रस का आख्यान आदि में किया है।[50] यह रस की प्रधानता का ही सूचक है।

रस के सम्बन्ध में अग्नि पुराण बतलाता है, कि सनातन, तथा व्यापक अक्षर पर ब्रह्म को वेदान्त आदि शास्त्रों में प्रकाशमय ईश्वर–चैतन्य माना गया है। तथा वह आनन्द रूप है और उस ब्रह्मानन्द की अभिव्यक्ति किसी मुक्तात्मा को होती है। आनन्द की वह अभिव्यक्ति ही ज्ञान स्वरूप चमत्कारपूर्ण रस है। जो इसका प्रथम विकार है, वह अहंकार कहलाता है। अहंकार से उत्पन्न अभिमान में तीनों भुवन परिसमाप्त होते हैं, और इस अभिमान से ही रति पैदा होती है, जो व्यभिचारी आदि से परिपुष्ट होकर शृङ्गार शब्द से कही जाती है।[51] इसी के भेद हास्यादि अनेक रस हैं जो अपने–अपने स्थायी भाव के परिमाण रूप हैं।[52]

अग्नि पुराण भी शान्त सहित नौ रस स्वीकार करता है।[53] इस पुराण का कथन है कि त्याग के बिना लक्ष्मी के समान ही रस के विना वाणी शोभा को नहीं प्राप्त करती है।[54] तथा इस अपार काव्य रूपी संसार में कवि ही एक प्रजापति है, जो अपनी रुचि के अनुसार ही विश्व का निर्माण करता है।[55] काव्य में यदि कवि शृङ्गारी है, तो सम्पूर्ण जगत् रसमय हो जाता है, और यदि वह विरागी है तो सम्पूर्ण विश्व नीरस प्रतीत

होता है।[56] जिस प्रकार से नाट्यशास्त्र कहता है, उसी प्रकार से ही अग्नि पुराण भी कहता है कि भाव से हीन न तो रस होता है और न ही रस से रहित भाव। भाव ही रसों को भाषित करते हैं, तथा अनुभाव के विषय बनते हैं।[57] अग्नि पुराण में रस को आत्मस्थानीय माना गया है। अग्नि पुराण का सिद्धान्त है कि काव्य में वचन–चातुरी का चमत्कार रहने पर भी रस ही उसका जीवित है।[58]

रस की ऐतिहासिकता के क्रम में ध्वनि–सम्प्रदाय के प्रतिष्ठापक ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन जी यद्यपि 'काव्यस्यात्मा ध्वनिः' इसी सिद्धान्त के पोषक हैं, किन्तु फिर भी रस–ध्वनि की ही सर्वोत्कृष्टता उन्हें मान्य है। इन्होंने कहा है कि गुण, रीति, अलङ्कारादि की सार्थकता भी उसी में निहित है जब वे रसादि के उत्कर्षक होते हैं, उनका स्वतन्त्र रूप से कोई महत्त्व नहीं है। यही कारण है कि उन्होंने कहा है कि काव्य की आत्मा वही प्रतीयमान रसादि रूप है।

आचार्य राजशेखर ने 'काव्यमीमांसा' में रस को काव्य की आत्मा माना है।[59] राजशेखर ने रसादि के सम्बन्ध में काव्यमीमांसा में बहुत अधिक न बताकर केवल सिद्धान्त रूप में कहा दिया है कि शब्दार्थ वाले काव्य में आत्मा रस है।

भट्टनायक ने अपने 'हृदयदर्पण' में रस आदि के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन किया है। भट्नायक के सिद्धान्त को 'भुक्तिवाद' के नाम से जाना जाता है। वे रसानुभूति के सम्बन्ध में कहते हैं कि रस की अनुभूति सामाजिकों को होती हैं। लोचनकार के गुरु भट्टतौत के अनुसार रस आनन्द स्वरूप होने से आत्म रूप है, और रस–समुदायरूप ही नाट्य है। काव्य में भी जब नाट्यायमानत्व अर्थात् प्रयोगत्व होता है, तभी अस्वाद होता है।[60]

प्रतीहारेन्दुराज ने उद्भट के काव्यालङ्कार सार संग्रह की लघुवृत्ति (टीका) में दिखाया है कि काव्य की आत्मा रस है। इनका कहना है कि काव्य और रस में अलङ्कार्य–अलङ्कारक भाव नहीं है, अपितु वह आत्मा–शरीर भाव है। रस काव्यात्मरूप में प्रतिष्ठित है और शब्द–अर्थ शरीररूप में। जिस प्रकार से आत्मा से अधिष्ठित ही शरीर जीवित रहता है, ठीक उसी प्रकार से रस से युक्त ही काव्य जीवित रह सकता है। अतः काव्य की आत्मा रस है।[61]

अभिनवगुप्त ने 'अभिनवभारती (टीका)' में तथा ध्वन्यालोक की टीका 'लोचन' में रस का अत्यन्त मार्मिक विवेचन किया है। इन्होंने 'रस–ध्वनि' की स्थापना की है। और मम्मट आदि आचार्यों ने इन्हीं के मत को मान्यता प्रदान की है। इनका कहना है कि जिस प्रकार से निर्जीव शरीर में आभूषण वैरस्य उत्पन्न करता है, ठीक उसी प्रकार से रसहीन काव्य में अलङ्कार व्यर्थ ही नहीं है, अपितु वैरस्य का उत्पादक भी है। अभिनवगुप्त जी के मत में 'रस–ध्वनि' ही काव्य का सर्वोत्कृष्ट रूप है। इन्होंने कहा है कि वह रस व्यङ्ग्य ही है।[62]

महिम भट्ट (व्यक्तिविवेककार) भी रस को काव्य की आत्मा ही मानते हैं।[63] वे कहते हैं कि विभावादि के द्वारा ही रस की अनुमिति होती है।

भोजराज जी ने 'सरस्वतीकण्ठाभरण' एवं 'शृङ्गारप्रकाश' में नवीन प्रकार से रस को व्याख्यायित किया है। भोजराज का अभिमान या अहंकार रूप शृङ्गार ही एक रस है जिससे अन्वित होने से ही काव्य कमनीय होता है।[64]

आचार्य मम्मट जी ने रस, वस्तु, अलङ्कार रूप त्रिविध व्यङ्ग्य को काव्य का सर्वस्व मानते हुये निरूपण में रस का आस्तित्व स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है।[65]

साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ ने आचार्य मम्मट के पश्चात् चतुर्दश शतक तक रस का जितना विस्तृत

विवेचन किया है उतना और किसी भी आचार्य ने नहीं किया है। 'साहित्य–दर्पण' में इन्होंने रस का विस्तृत विवेचन सभी अङ्गों सहित अत्यन्त सरल ढ़ग से किया है।

वस्तुतः 'काव्यप्रकाश' एवं साहित्यदर्पण में रस तत्त्व को लेकर कोई भी सैद्धान्तिक भेद नहीं है, क्योंकि विश्वनाथ कविराज ने अनेक स्थानों में मम्मट का ही अनुगमन किया है। फिर भी 'साहित्यदर्पण का रस–विवेचन अपनी एक अलग विशिष्टता रखता है।

'साहित्यदर्पण' में कविराज ने रस के परिप्रेक्ष्य में कहा है कि विभाव, अनुभाव, तथा संचारी भाव से अभिव्यक्त सहृदयों के हृदय में वासना रूप में स्थित रति आदि स्थायी भाव रस रूप में परिणत होता है।[66] आचार्य विश्वनाथ जी ने रसात्मक वाक्य को काव्य[67] मानकर अपने ग्रन्थ 'साहित्यदर्पण' के आरम्भ में ही काव्य में रस के आत्मत्व को बता दिया है। यहाँ पर 'रस्यते इति रसः इस व्युत्पत्ति के आधार पर रस, भाव, रसाभास आदि सभी परिगृहीत होते हैं।

केशव मिश्र के 'अलङ्कारशेखर' में रस को काव्य में आत्मस्थानीय ही माना गया है।[68]

रसगङ्गाधरकार पण्डितराज जगन्नाथ जी ने अपने ग्रन्थ रसगङ्गाधर में रसादि का अत्यन्त मार्मिक एवं सूक्ष्म विवेचन किया है। इन्होंने ध्वनि के असंलक्ष्य–क्रमव्यङ्ग्य रूप भेद में ही रस, भावादि का विचार किया है। उन्होंने कहा है कि अभिनवगुप्त, मम्मट आदि के ग्रन्थों के स्वारस्य से आवरण रहित चित् से विशिष्ट रति आदि भाव ही रस हैं।[69]

इस तरह से जगन्नाथ जी ने अभिनवगुप्त आदि आचार्यों के मत को बताकर कहा है कि वस्तुतः 'रसो वै सः' इत्यादि श्रुति के स्वारस्य से रत्याद्यवच्छिन्नभग्नावरणाचित् अर्थात् रत्यादिभाव–विषयक आवरण–रहित आत्मचैतन्य ही रस है, न कि वह चैतन्य का विषय रत्यादि, क्योंकि यदि चैतन्य–विषयीभूत रति आदि को रस मान लिया जाय तो रस की चैतन्यता नहीं रहती है तब रस और चैतन्य में एकता को बतलाने वाली 'रसो वै सः' इत्यादि श्रुति के साथ विरोध हो जाता है। अतः रत्यादिविशिष्ट आवरण रहित आत्मचैतन्य ही रस है।[70]

**सन्दर्भ–**


1. अभि0भा0पृ0 288; अ0को0 नानार्थ वर्ग, 227। रसः स्वादे जले वीर्ये शृङ्गारादौ विषे द्रवे। बोले रागे गृहे धातौ तिक्तादौ पारदेऽपि च।।–हेमकोश
2. रसेन समगंस्महि–1–23–23।
3. ऋ0 1–71–5
4. ऋ0 1–105–2
5. ऋ0 1–187–4, 5
6. ऋ0 1–29–16
7. ऋ0 5–43–4
8. ऋ0 8–3–20/9–47–3
9. ऋ0 9–16–1/9–23–5/9–38–5
10. ऋ0 9–63–13
11. ऋ0 9–67–3
12. ऋ0 9–67–32
13. ऋ0 9–84–5
14. अथर्व0 1–28–3, 4–17–3 ।
15. अथर्व0 6–67–1 ।

16. ऐतरेय ब्रा0–7–31, 5–19, 8–8, 8–20।
17. शत0ब्रा0–1–2–2–2, 1–3–1–25, 2–3–1–10, 3–1–4–3, 3–3–3–18
18. छन्दसां रसो लोकानप्येष्यतीति तं परस्ताच्छन्दोभिः पर्यगृहात्.....पुनः छन्दःसु रसमादधात्। सरसैर्हास्य छन्दोभिरिष्टं भवति सरसैश्छन्दोभिर्यज्ञं तनुते।'–शत0ब्रा0 1–2–41–8 ।
19. छन्दोभिर्हि देवाः स्वर्गं लोकं समाश्नुवत।....यो वा ऋचि मदोयः सामन् रसो वै स तच्छन्दः स्वेवैतद्रसं दधाति.... शत0ब्रा0 4–3–2–5
20. शत0ब्रा0 4–6–9–16
21. शत0ब्रा0 6–1–1–11–12/6–1–2–2, 3।
22. शत0ब्रा0 6–5–4–12 ।
23. शत0ब्रा0 6–1–2–4 ।
24. शत0ब्रा0 6–7–3–3।
25. तै0उ0–2–7 ।
26. शत0ब्रा0 7–2–3–4।
27. शत0ब्रा0 8–7–2–17 ।
28. शत0ब्रा0 10–1–1–1–, 4–6/10–3–5–12।
29. प्रश्नोप0–4–2/4–8/4–9, मुण्डको0 2–9/कठोप0–1–3–15, 2–1–3।
30. तै0उ0–2–7/द्र0वही 2–9/2–2।
31. छा0उ0–1, 2–3, 9।
32. छा0उ0–4–17–5, 6।
33. सूर्यमस्या वत्समाह साहचर्याद स–हरणाद्वा। नि0 2, 6, 20 ।
उषसमस्य स्वसारमाह साहचर्याद् रसहरणाद्वा। नि0 3, 3, 16।
34. अश्विनौ–यद् व्यश्नुवाते सर्वं रसेनान्यो न्योतषान्यः। निरू0 12, 1, 11
35. 'रस आस्वादन–स्नेहनयोः' धातु से 'एरच्' 3 । 3 । 56 सूत्र से अच् णिलोप।
36. रस धातु से 'पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण' 3 । 3 । 118 सूत्र से घ प्रत्यय, णिलोप।
37. उसी धातु से 'पचाद्यच्' पा0सू0 3 । 1 । 134
38. रस धातु से 'भावे' 3 । 3 । 18 या 'अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्' 3 । 3 । 19 से घञ्।' अलोप तथा णिलोप के स्थानिवद् भाव से उपधा वृद्धि का अभाव।
39. मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंच–मिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ।। रामायण–1, 2, 15।
40. चित्रम्। आम्नायादन्यत्र नूतनश्छन्दसामवतारः । उ0च0 2 अं0
41. शोकार्न्तस्य प्रवृन्तो में श्लोकों भवतु नान्यथा। रामा0 1, 2, 18, 40, 42
42. आदिशब्देन बीभत्सादभुतशान्त गृह्यान्ते। रामायण गोविन्दराज की व्याख्या।
43. महाभारत अश्वमेधिक पर्व, अ0 69
44. विभावानुभाव–व्यभिचारि–संयोगाद्रस–निष्पत्तिः । ना0शा0अ0 6।
45. रसाभावा ह्यभिनयाः धर्मी वृत्तिप्रवृत्तयः।
सिद्धिः स्वरास्तथोतोद्यं गानं रंगश्च संग्रहः ।।ना0 शा0 6, 10।।
46. नहि रसाद् ऋते कश्चिदर्थः प्रवर्तते। ना0 शा0 6।।
47. तस्मादस्ति शान्तो रसः। तथा च चिरन्तनपुस्तकेषु 'स्थायिभावान्

रसत्वमुपनेष्यामः' इत्यनन्तरं 'शान्तो नाम शमस्थायिभावात्मकः' इत्यादि
शान्तलक्षणं पठयते। तत्र सर्वरसानां शान्तप्राय एवास्वादः.....।
तन्मुख्यतालाभात्....सर्वप्रकृतित्वाभिधानाय पूर्वमभिधानम् ।अभि0 भा0 पृ0 339।

48. वि0 ध0 3, 15, 14। 3, 17, 61 । 3, 30 । 1 ।

49. ना0 शा0 पृ0 335।

50. तत्र रसानेव तावदादों अभिव्याख्यास्यामः। न हि रसाद् ऋते कश्चिदर्थः प्रवर्तते। ना0शा0. 6, 31, पर, पृ0 270।

51. अक्षरं परमं ब्रह्म सनातनमजं विभुम्।
वेदान्तेषु वदन्त्येकं चैतन्यं ज्योतिरीश्वरम्।।
आनन्दः सरसस्तस्य व्यज्यते स कदाचन।
व्यक्ति सा तस्य चैतन्यचमत्काररसाह्वया।।
आद्यस्तस्य विकारो यः सोऽहंकार इति स्मृतः।
ततोऽभिमानस्तत्रेदं समाप्तं भुवनत्रयम्।।
अभिधानाद् रतिः सा च परिपोषमुपेयुषी।
व्यभिचार्यादि–सामान्याच्छृङ्गार इति गीयते ।। अ0पु0 339, 1–4।

52. तद्भेदाः काममितरे हास्याद्या अप्यनेकशः।
स्वस्वस्थायिविशेषोत्थ–परिपोष–स्वलक्षणाः।। वहीं 5 ।

53. श्रृंगार–हास्य–करुणा रौद्र–वीर–भयानकः।
बीभत्साद्भुत–शान्ताख्याः स्वभावाच्चतुरो रसाः।

54. लक्ष्मीरिव विना त्यागान्न वाणी भाति नीरसा । अग्नि 9 ।

55. अपारे काव्य–संसारे कविरेव प्रजापतिः।
यथास्मै (वै) रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते।। अग्नि 10 ।।

56. श्रृङ्गारी चेत् कविः काव्ये जातं रसमयं जगत्।
स चेत् कविर्वीतरागो नीरसं व्यक्तमेव तत् ।।अग्नि पु0 339, 11।।

57. न भावहीनोऽस्ति रसो न भावो रसवर्जितः।
भावयन्ति रसानेभिर्भाव्यन्ते च रसा इति ।। अग्नि पु0 12 ।।

58. वाग्वैदग्ध्य–प्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्। अग्निपुराण

59. रस आत्मा का0 मी0 पृ0 18।

60. प्रीत्यात्मा च रसस्तदेव नाट्यम्.....। न नाट्ये एव च रसाः काव्ये–
ऽपि नाट्यायमान एव रसः। काव्यार्थ–विषये हि प्रत्यक्षकल्प–संवेदनो
दये रसोदयः–इत्युपाध्यायाः। तदाहुः काव्यकौतुके प्रयोगत्वमनापन्ने
काव्ये नास्वाद–संभवः। इति। अभि0 भा0 प्रथम भाग पृ0 291 पर उद्धृत।

61. न खलु काव्यस्य रसानां चालंकार्यालंकारभावः किन्त्वात्मशरीरभावः।
रसा हि काव्यस्यात्मत्वेनावस्थिताः शब्दार्थौं च शरीर–रूपतया।
यथा ह्यात्माधिष्ठितं शरीरं जीवतीति व्यपदिश्यते। तथा रसाधिष्ठितस्य
काव्यस्य जीवद्रूपतया व्यपदेशः क्रियते। तदाहुः–
रसाद्यधिष्ठितं काव्यं जीवद्रूपतया यतः।
कथ्यते तद्रसादीनां काव्यात्मत्वं व्यवस्थितम् ।। काव्या0 सा0 स0 लघुवृत्ति पृ0 83।

62. प्रतिपत्तुश्चरसावेशो रसाभिव्यक्त्यैव, रसश्च व्यङ्ग्य एव। ध्व0पृ0 18।।

63. काव्यस्यात्मनि साङ्गनि रसादिरूपे न कस्यचिद् विमतिः—व्यक्ति वि0 पृ0 22।
64. रसोऽभिमानोऽहंकार शृङ्गार इति गीयते।
योऽर्थस्तस्यान्वयात् काव्यं कमनीयत्वमश्नुते।।स0क0 5, 1।
65. ये रसस्याङ्गनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः। का0प्र0उ0 8।
66. विभावेनानुभावेन व्यक्तः संचारिणा तथा।
रसतामेति रत्यादिः स्थायीभावः सचेतसाम्।। सा0 द0 3, 1।
67. वाक्यं रसात्मकं काव्यम्। सा0द0प्र0परि0।
68. रस आत्मा परे मनः। अलङ्कार शे0म0 20।
69. रस0ग0पृ0 38—39।
70. रस ग0 पृ0 38—39।